पाप-पुण्य

भाग-२

हमारी बुद्धि इतनी मलिन हो चुकी है कि इतने पाठ, कथा, कीर्तन करते तथा सुनते हुए भी हमारे मन पर कोई प्रभाव नही पड़ता तथा न कोई गुरबाणी की 'चोट' लगती है तथा उसी प्रकार **माया की गहरी नींद में धुत पड़े हैं।**

यदि कभी **थोड़ा सा** मानसिक **हिलोर या वैराग्य** (emotional feelings) आता भी है, तो वह **'भावनात्मक हिलोर' भी हमारे मन पर जमी हुई ग्लानि की 'भड़ास' से शीघ्र ही उड़ जाता है** तथा हम वही **रूखे-सूखे पत्थर के पत्थर ही बने रहते हैं** तथा उस पुराने मन के स्वभाव की प्रणाली में बहते जाते हैं।

गुरबाणी में हमारी इस दशा पर बहुत कटाक्षमयी ताना मारा है —

मनमुखु लोकु समझाईऐ कदहु समझाइआ जाइ ।।
मनमुखु रलाइआ ना रलै पइऐ किरति फिराइ ।। (पृ. 87)

मन मूरख अजहू नह समझत सिख दै हारिओ नीत ।। (पृ. 536)

इस प्रकार हम अपनी ही रची हुई पापों की **'जंजीरों' द्वारा कर्म-बद्ध होकर** त्रिगुण मायिकी भँवर (vicious whirlpool) **में गोते खा रहे हैं तथा घोर नरक भोग रहे हैं।**

बच्चों को माँ-बाप पहले प्यार से समझाते, घूरते तथा ताड़ना करते हैं। परन्तु यदि बच्चा फिर भी न सुधरे, तब **सख्त सज़ा दी जाती है।**

कोटि बिघन तिसु लागते जिस नो विसरै नाउ ।।
नानक अनदिनु बिलपते जिउ सुन्नैं धरि काउ ।। (पृ. 522)

जिनी नामु विसारिआ बहु करम कमावहि होरि ।।
नानक जम पुरि बधे मारीअहि जिउ संन्ही उपरि चोर ।। (पृ. 1247)

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ ।।
ऐथै दुख धणेरिआ अगै ठउर न ठाउ ।। (पृ. 1383)

जब हमारे **'पापों' की अति हो जाती है,** तब ईश्वरीय 'हुकुम' अनुसार **यम का 'ठेंगा' (मार)** (shock treatment) लगता है, तब हम मायिकी नींद से **जाग कर 'हे राम' कहते हैं** तथा कानों को हाथ लगाकर 'तोबा' करते हैं।

दुखि लागै राम नामु चितारी ।।.....
रोग गिरसत चितारे नाउ ।। (पृ. 196)
साकत जम की काणि न चूकै ।।
जम का डंडु न कबहू मूकै ।। (पृ. 1030)
मनमुखु अंधा अंधु कमाए ।।
बहु संकट जोनी भरमाए ।।
जम का जेवड़ा कदे न काटै अंते बहु दुखु पाइआ ।। (पृ. 1068)
कबीर जम का ठेंगा बुरा है ओहु नही सहिआ जाइ ।। (पृ. 1368)
पापी करम कमावदे करदे हाए हाइ ।।
नानक जिउ मथनि माधाणीआ तिउ मथे धम राइ ।। (पृ. 1425)

इस प्रकार हमारे जीवन में 'मोड़' आता है, तब हम सतसंग द्वारा **आत्मिक मार्ग-दर्शन प्राप्त कर** पाठ-पूजा, कर्म-धर्म आदि **साधन करना शुरु करते हैं ।**

परन्तु शीघ्र ही यह सारी कहानी **भूल जाते हैं** तथा हम फिर उसी जन्म-जन्मों की **घिसी हुई पुरानी प्रणाली** (old groove) **के वेग में बहने लगते हैं ।**

अकाल पुरुष ने अपने प्यारे अंश 'जीव' को इस मायिकी 'मोह माया' के 'बिखम 'शोक सागर' तथा 'अंध गहेरा संसार' से **बचाने तथा निकालने के लिए अपने दयालु 'बिरद' अनुसार** समय-समय पर गुरू, अवतार, महापुरुष संसार में भेजे । उन्होंने अपने जीवन तथा बाणी द्वारा सच्ची-पवित्र आत्मिक दिशा दे कर हमें इस मायिकी पापों की ग्लानि से बचने तथा निकलने के लिए उपदेश दिये।

गुरू साहिबान ने भी हमें पापों की ग्लानि से बचने तथा निकलने के लिए सरल तथा सुन्दर उपदेश दिये हैं —

हरि हरि नामु जपहु मन मेरे
जितु सिमरत सभि किलविख पाप लहाती ।। (पृ. 88)
साधू संगि तरीजै सागरु कटीऐ जम की फासा जीउ ।। (पृ. 108)
सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ।।
कलि कलेस तन माहि मिटावउ ।। (पृ. 262)

कोटि अप्राध साधसंगि मिटै ।।
संत क्रिपा ते जम ते छुटै ।। (पृ. 296)

कोटि पराध मिटे खिन भीतरि जां गुरमुखि नामु समारे ।। (पृ. 670)

प्रभु चिति आवै ता कैसी भीड़ ।।
हरि सेवक नाही जम पीड़ ।। (पृ. 802)

अवरि उपाव सभि तिआगिआ दारू नामु लइआ ।।
ताप पाप सभि मिटे रोग सीतल मनु भइआ ।। (पृ. 817)

सासि गिरासि सदा मनि वसै जमु जोहि न सकै तिसु ।। (पृ. 854)

मेरे मन नामु नित नित लेह ।।
जलत नाही अगनि सागर सूखु मनि तनि देह ।। (पृ. 1006)

जिसु मनि वसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर ।।
भुख तिख तिसु न विआपई जमु नही आवै नीर ।। (पृ. 1102)

हमारा मन बहुत चंचल तथा 'पिछलग्गु' (highly susceptible) है। 'जिनी लाया गली तिस नालि उठ चली' कहावत अनुसार हमारा मन बहुत शीघ्र बाहर का प्रभाव 'ग्रहण' करके 'ताता-सीरा' हो जाता है।

हम अनेक जन्मों से अनगिनत बाहर के प्रभाव ग्रहण करते आये हैं। उन ख्यालों को **'बोहरा-बोहरा'** (repeat) कर अपने अन्तःकरण के स्टोर (sub-conscious mind) में **जमा किया हुआ है।** जब कोई बाहर की उक्साहट (exciting cause) मिलती है, तब अन्तःकरण (inner computer) की गहरी **तहों में से पुरानी मानसिक ग्लानि की भड़ास उभर आती है तथा हम उस मानसिक रंगत के प्रभाव अधीन विवश, कर्म-बद्ध होकर अनेक प्रकार की तुच्छ रुचियों के शिकार हो जाते हैं तथा जानते-बूझते हुए बुरे कर्म या पाप कमाते हैं।**

जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ ।।
पाप करत सकुचिओ नही नह गरबु निवारिओ ।। (पृ. 727)

फिरि फिरि फाही फासै कऊआ ।।
फिरि पछुताना अब किआ हुआ ।। (पृ. 935)

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ।।
काहे की कुसलात हाथि दीपु कूए परै ।। (पृ. 1376)

इस प्रकार **हमारे मन के —**

तुच्छ ख्यालों

तुच्छ रुचियों

मलिन संगत

मानसिक ग्लानि

बुरे कर्मों

पापों

के लिए, **हम स्वयं ही जिम्मेवार हैं तथा इनका परिणाम भी हमें जीवन में भोगना पड़ता है।**

हमारे तुच्छ ख्यालों या रुचियों का कारण हमारी 'संगति' ही है। 'संगति' केवल इन्सानों की ही नहीं होती, बल्कि किताबों, ख्यालों या यादों की भी संगति होती है। इन्सानों की संगति से तो अलिप्त रह सकते हैं, परन्तु हमारे अन्तःकरण की तहों में से निकली भड़ास से बचा नहीं जा सकता । वह तो अपने आप सहज-स्वभाव अन्दर से ही उभरती है तथा **हमारी रुचियों को गंदा करती है।**

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ।। (पृ. 1369)

इसीलिए हमें गुरू साहिब ने गुरबाणी द्वारा परम-पवित्र **साध-संगति** करन की ताकीद की है —

महा पवित्र साध का संगु ।।
जिसु भेटत लागै प्रभ रंगु ।। (पृ. 393)

संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा ।।
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगति भरे भंडारा ।। (पृ. 614)

साधसंगति कै बासबै कलमल सभि नसना ।।
प्रभ सेती रंगि रातिआ ता ते गरभि न ग्रसना ।। (पृ. 811)

होहु क्रिपाल सुआमी मेरे संतां संगि विहावे ।।
तुधहु भुले सि जमि जमि मरदे तिन कदे न चुकनि हावे ।। (पृ. 961)

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।। संत मंडल महि दुरतु सभु नसै ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।। संतसंगि होइ एक परीति ।। (पृ. 1146)

माधो साधू जन देहु मिलाइ ।।
देखत दरसु पाप सभि नासहि पवित्र परम पदु पाइ ।। (पृ. 1178)

इसके विपरीत जब हमारे अन्दर से मलिन ख्याल उठते हैं, तब हम उन्हे और 'घोटते हैं या **अभ्यास करते हैं** । इस प्रकार ये तुच्छ ख्याल हमारे मन की **गहराईयों में और धँस जाते है** तथा फिर कुछ समय उपरान्त हमारे अन्तःकरण में बस कर समा जाते हैं तथा हमारा **स्वभाव या आचरण बन जाता है,** जो मौका मिलने पर 'भड़ास' के रूप में बाहर प्रकट हो जाता है, जिसके द्वारा हमारे **कर्म या भाग्य बनते है ।**

उपरोक्त विचार से पता लगा कि **'संगति' का प्रभाव ग्रहण करने से ही हमारे मन को अच्छी या बुरी 'रंगत' चढ़ती है।**

'संगति' कई प्रकार की होती है, जैसे —

1. व्यक्तियों की संगति
2. लिखित रचनाओं की संगति
3. **ख्यालों की संगति**
4. वचनों की संगति
5. निगाह की संगति
6. मृत्तकों की संगति, आदि ।

व्यक्तियों तथा लिखित रचनाओं आदि की संगति के **प्रभावों** से तो सभी परिचित हैं या अनुभव हुआ होगा परन्तु 'ख्यालों की संगति' सूक्ष्म होने के कारण इससे लोग **अनजान तथा बेपरवाह** हैं । वास्तव में प्रत्येक इन्सान अपने ख्यालों तथा सोच अनुसार अपने अन्दर अच्छी या बुरी दुनियां रचता तथा बसाता है।

Man is incessantly weaving his own good or bad world inside and around himself, by his own thoughts, like a silkworm, and suffers the consequences of his own thoughts and deeds, thereby creating his own fate and destiny.

जैसे ही हमें कोई व्यक्ति **याद आता है**, तभी उसके अच्छे-बुरे गुण-अवगुण हमारे **मन के शीशे** (screen) पर **उभर आते हैं।** यदि किसी उच्च जीवन वाले गुरमुख प्यारे की याद आये, तब हमारा तन-मन-हृदय श्रद्धा-भाव, प्रीत, प्रेम, रस, चाव, खुशी तथा **शान्ति से परिपूर्ण हो जाता है।**

दूसरी ओर यदि कोई **'मनमुख'** याद आ जाये, जिससे हमें **नफरत** (allergy) हो, तब तुरन्त हमारा तन-मन-हृदय, ईर्ष्या, द्वैत, **क्रोध तथा नफरत से भर जाता है** तथा **मलिन** हो जाता है। इस का प्रभाव हमारी आँखों में नफरत तथा क्रोध की 'झलक' तथा **'माथे' की शिकन** द्वारा तुरन्त प्रकट हो जाता है।कई बार हमारे तन-बदन में क्रोध तथा घृणा की 'आग' लग जाती है, जिस का प्रभाव काफी समय तक रहता है तथा हम **अपनी लगायी हुई गुप्त अग्नि में जलते रहते हैं।**

हमारे अन्दर की दुनिया में, **'उत्तम पुरुष'** तो कम ही होते हैं, तथा वे हमें **याद भी कम ही आते हैं, परन्तु तुच्छ रुचियों वाले लोगों की तो हमारी ख्याली दुनियां में भीड़ लगी हुई है।** इनकी हमारी मानसिक दुनिया मे दिन-रात **भगदड़ मची रहती है** यदि एक मनमुख की **'ख्याली संगत'** की अग्नि शान्त होती है, तो दूसरा मनमुख याद आ जाता है तथा फिर उसी प्रकार नफरत तथा क्रोध की अग्नि में से गुजरना पड़ता है। इस प्रकार हम **अपने अन्दर स्वयं बसायी हुई 'ख्याली दुनिया'** की नफरत, वैर-विरोध तथा क्रोध की आग में जलते-भुनते-कुढ़ते रहते हैं, जिससे हमारा मन **'कठोर' हो जाता है।**

बाहर की संगति से हम अलिप्त रह कर बच सकते हैं, परन्तु हमारे मन की **गहरी तहों में बसायी हुई 'ख्याली दुनिया' के प्रभाव से बचना अति कठिन है,** क्योंकि यह तो दिन-रात हमारे रग-रग में बस रही है। जब कभी हमारा मन बाहर के रुझान से मुक्त होता है या कोई और उनकी याद करवा दे, तब आन्तरिक रोष-शिकायत, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध की **गुप्त फाइलें** (unwritten case files) **खोल कर,** हम खाम-खाह मानसिक, दुख, क्लेश, कुढ़न व जलन के संताप से दुखी होते रहते हैं। यहाँ ही बस नही, ऐसे **हानिकारक संताप के ज़हर को बार-बार दोहराने से,** मन तथा अन्तःकरण में यह मानसिक ग्लानि और भी धँसती तथा बसती चली जाती है। जिससे मन 'कठोर' होकर श्रेष्ठ आत्मिक विचारों को **ग्रहण करने से असमर्थ हो जाता है** तथा अगले जन्मों में भी यह **ज़हरीली ग्लानि साथ जाती है।**

ऐसी **'मानसिक ग्लानि'** में से तुच्छ ख्याल, तुच्छ रुचियाँ, तुच्छ कर्म अथवा

पाप ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई अच्छे ख्याल, या पुन्य (अच्छे कर्म) करते भी हैं, तो वे भी **अहम् मयी ही होते हैं।**

हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ।।
हउ विचि पाप पुन वीचारु ।।
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ।। (पृ. 466)

उपरोक्त बतायी गयी **मानसिक ग्लानि की अग्नि ने सारी दुनिया को अपनी चपेट में ले रखा है —**

गूझी भाहि जलै संसारा भगत न बिआपै माइआ ।। (पृ. 673)

इस **'गुप्त अग्नि' से बचने का साधन** गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है —

मन मेरे गहु हरि नाम का ओला ।।
तुझै न लागै ताता झोला ।। (पृ. 179)

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम ।। (पृ. 571)

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई ।। (पृ. 819)
आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ।। (पृ. 1291)

पहले बताया जा चुका है कि —

1. समस्त दैवीय गुण तथा आत्मिक बख्शिशें, अकाल पुरुष के प्रकाश **'नाम' से उत्पन्न होती हैं ।**

2. समस्त अवगुण, तुच्छ ख्याल, तुच्छ रुचियाँ पाप आदि त्रि-गुण माया के अंधकार या **भ्रम मे से उत्पन्न होते हैं।**

3. 'माया' अकाल पुरुष के प्रकाश (नाम) की **'गैर हाज़री' या 'अनुपस्थिति' का ही नाम है ।**

इससे स्पष्ट है कि नाम का 'प्रकाश' होने पर स्वयं ही माया का 'अन्धकार' दूर हो जाता है तथा इसके 'सेवक' अहम्, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तथा इन से उत्पन्न समस्त तुच्छ ख्याल, तुच्छ रुचियाँ, पाप आदि समाप्त हो जाते हैं।

माया के इस 'अंध गुबार' अथवा अंधकार को ही भ्रम कहा जाता है —

ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ।।
कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ।। (पृ. 92)

भरमे भूला फिरै संसारु ।।
मरि जनमै जमु करे खुआरु ।। (पृ. 560)

साधो इहु जगु भरम भुलाना ।।
राम नाम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ।। (पृ. 684)

माइआ मोहि कड़े कड़ि पचिआ ।।
बिनु नावै भ्रमि भ्रमि भ्रमि खपिआ ।। (पृ 1140)

इस भ्रम रूपी माया के अंधकार को दूर करने के लिए गुरु साहिब ने गुरबाणी में यह विधि बतायी है —

अंतरि सबदु मिटिआ अगिआनु अंधेरा ।। (पृ. 798)

भ्रम भै बिनसि गए खिन भीतरि अंधकार प्रगटे चानाणु ।।
सासि सासि आराधै नानकु सदा सदा जाईऐ कुरबाणु ।। (पृ. 825)

राम नाम रसु चाखिआ हरि नामा हर तारि ।।
कहु कबीर कंचनु भइआ भ्रमु गइआ समुद्रै पारि ।। (पृ. 1103)

इस समस्त लेख के विचारों में से एक जरूरी तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय (important and crucial choice) हमारे सामने आता है। वह यह है कि जीवन के निम्नलिखित **'पक्षों' का चुनाव** (discrimination) करके हमने अपने जीवन को उत्तम-श्रेष्ठ सुन्दर तथा कल्याणकारी मार्ग-दर्शन देना है, इसलिए इन **पक्षों का 'चयन' करके तथा 'पालन करके' अपना जीवन सफल बनाना है—**

अच्छे ख्याल	या	बुरे ख्याल
अच्छी रुचियाँ	या	बुरी रुचियाँ
दैवीय कर्म	या	तुच्छ कर्म
निर्मल मन	या	मैला मन
साध संगति	या	कुसंगति
पुन्य	या	पाप
आत्मिक मंडल	या	मायिकी मंडल
आत्मिक प्रकाश	या	मायिकी भ्रम
आत्मिक रस	या	मायिकी अनरस

आत्मिक धन	या	मायिकी धन
आत्मिक खुशी	या	मायिकी खुशी
स्वर्ग	या	नरक
जीवन	या	मृत्यु
गुरमति	या	मनमति
गुरमुख	या	मनमुख
अनुभव	या	दिमागी ज्ञान

यह **'चयन' किये बिना** हमारे जीवन में कोई परिवर्तन या तब्दीली **नहीं हो सकती।** हमारे 'जीवन की नौका' बिना किसी 'दिशा' के माया के **'बिखम अग्नि शोक सागर' के तूफानों में गोते खाती रहेगी ।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि इतने पाठ-पूजा, कर्म-धर्म आदि साधन करते हुए भी, **हमारे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता** तथा हम उसी मायिकी ग्लानि की पुरानी प्रणाली में ही बहते जा रहे हैं ।

यह **'चयन'**, अनुभवी आत्मिक ज्ञान वाली **'विवेक बुद्धि' द्वारा ही हो सकता है।** मात्र दिमागी ज्ञान, चतुराईयाँ तथा फिलोसफियाँ हमें और भी भटका कर अंध-गुबार के भ्रम-चक्र में **फँसा देती हैं ।**

इस विचार को और विस्तारपूर्वक बताने का प्रयत्न किया जाता है —

1. मायिकी **भ्रम-भुलाव का अंधकार** ही समस्त दुख-क्लेश, यम, जम-जेवरी, जम-दंड, आवागमन, नरक आदि का **मूल कारण है** तथा हम 'मायिकी ग्लानि' के 'बिखम अग्नि-शोक-सागर' में **गोते खा रहे हैं ।**

2. आत्म-प्रकाश की रोशनी (नाम) में सदैवीय सुख, अविनाशी आनन्द, प्रीत, **प्रेम, रस, चाव, खुशी तथा शान्ति का व्यवहार है ।**

जिस प्रकार **सूर्य की ओर मुँह करने से** — प्रकाश, उष्णता, जीवन, नूर आदि अनेक गुण **सहज ही प्राप्त हो जाते हैं** तथा **'अन्धकार' की ओर अपने-आप 'पीठ' हो जाती है ।**

इसके विपरीत सूर्य की ओर **पीठ करते या उसके छिपते ही सूर्य के अनेक**

गुणों से वंचित हो जाते हैं तथा **अंधकार के समस्त अवगुण हमारे 'पल्ले' पड़ जाते हैं,** जिस कारण हमें अनेक दुख-क्लेश भोगने पड़ते है ।

ठीक इसी प्रकार, जब हम **'नाम' के प्रकाश की ओर ध्यान, याद या 'सिमरन' करते हैं,** तब हमारे अन्दर समस्त ईश्वरीय **आत्मिक 'गुण' सहज ही 'प्रवेश' हो जाते हैं** तथा सहज ही हमारी 'पीठ' अन्धेरे की ओर हो जाती है तथा अन्धेरे के **समस्त अवगुणों से सहज ही छुटकारा हो जाता है ।**

इन दोनो जरूरी तथा महत्वपूर्ण **'दशाओं' के बीच** एक गुप्त नुक्ता (secret and crucial point) है जिस से अलग – अलग एक दूसरे के **उलट राह** (opposite and contrary direction) निकलते हैं, जिनके द्वारा हमारी **अच्छी या बुरी जीवन दिशा बनती है ।**

लिव धातु दुइ राह है हुकमी कार कमाइ ।। (पृ. 87)

राह दोवै इकु जाणै सोई सिझसी ।। (पृ. 142)

दुइ पंदी दुइ राह चलाए ।। (पृ. 1032)

यह जरूरी नुक्ता हमारे मन की 'रंगत' का है ।

मलिन मन में से हमारे जीवन का रुख अवश्य ही **मायिकी रसातल की ओर हो जाता है** तथा **निर्मल मन** की रुचि स्वयं ही **'नाम' की ओर होती है ।** जिस प्रकार, **'प्रकाश' होने से 'अंधकार' स्वयं ही अलोप हो जाता है,** हटाना नहीं पड़ता । उसी प्रकार **'नाम' का प्रकाश होने पर,** मायिकी भ्रम-भुलाव का 'अंधकार' तथा उसकी 'सेना' तथा **'हठीली फौज' भी स्वयं ही अलोप हो जाती है ।**

इस विचार का अन्तिम **निष्कर्ष या निचोड़** यह है कि —

माया के **भ्रम-भुलाव के अंधकार में रहना ही — पाप है ।**

नाम के प्रकाश मंडल में विचरण करना ही — पुन्य है ।

अथवा अकाल पुरूष की —

भूल ही **पाप** है, तथा

याद ही **पुन्य** है ।

कलि महि एहो पुंनु गुण गोविंद गाहि ।। (पृ. 962)

हमारे मानसिक तथा धार्मिक जीवन का व्यवहार, **गुरबाणी के आशय के बिल्कुल उलट हो रहा है ।**

जिस बात को **'भुलाना'** है, उसी बात को **'याद करके'** घोट कर सिमरन करके, दृढ़ कर रहे हैं ।

इस के विपरीत, जिस बात को 'याद' करना है, अभ्यास करना है, दृढ़ करना है, उसी को पूर्णतया **'भुलाये' हुए हैं** या उस से लापरवाह तथा मस्त हुए बैठे हैं ।

काच बिहाझन कंचन छाडन बैरी संगि हेतु साजन तिआगि रवरे ।।
होवनु कउरा अनहोवनु मीठा बिरिवआ महि लपटाइ जरे ।। (पृ. 823)

गुरू साहिब ने हमें इस जरूरी नुक्ते के विषय में यूँ प्रेरणा तथा मार्गदर्शन किया है—

'रोसु न काहू संग करहु'
'आपन आपु बीचारि'
'पर का बुरा न राखहु चीत'
'बुरे दा भला करि'
'गुसा मन न हढाइ'
'निंदा भली किसै की नाही'
'दया छिमा तन प्रीति'
'ना को बैरी नही बिगाना'
'सगल संगि हम को बनि आई'
'साझ करीजै गुणह केरी'
'छोडि अउगुण चलीऐ'
'अवगुण को न चितारे'
'हथहु दे कै भला मनाए'
'अणहोदे आपु वंडाए'
'आपु गवाइ सेवा करे'

'तजहु सिआनप सुरि जनहु'

'सिमरहु हरि हरि राइ'

'सभे गला विसरनु'

'इको विसरि न जाउ'

'अवरि उपाव सभि तिआगिआ'

'दारू नाम लइआ'

'नाम बिना सभि कूडु गाली होछीआ,

'नानक लेखै इक गल'

होरू हउमै झखणा झाख'

परन्तु हमारे **दैनिक जीवन का 'व्यवहार' इसके ठीक विपरीत दिखायी दे रहा है ।**

इन दिव्य उपदेशों का व्यवहारिक रूप से **पालन करने के लिए**, नीचे लिखे कुछ 'सुझाव' (practical suggestions) सहायक हो सकते हैं —

जब कभी ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, निंदा आदि तुच्छ वाशनाओं वाले ख्याल उत्पन्न हों, तब उन्हें **उसी समय तत्काल —**

'ओ हो'

'कोई बात नहीं'

'तो क्या हुआ'

'जाने-दो'

'छोड़ो भी'

कह कर, **'भुला कर'** (forget) किसी **श्रेष्ठ ख्याल की ओर ध्यान करके, अपनी 'याद' में से उस मलिन कल्पना को मिटाने की कोशिश करो** । यदि फिर भी तुच्छ ख्याल या तुच्छ रूचियाँ **तंग करें** तब —

1. गुरबाणी का पाठ तथा कीर्तन करो या सुनो ।
2. ऊँची-ऊँची 'वाहिगुरू' मंत्र का जाप करो ।

3. पवित्र-पावन तथा श्रद्धा-भाव से भरी कथाएं पढ़ो या सुनो ।

4. दौड़ कर गुरमुख प्यारों के पास जाकर **संगति** करो ।

5. गुरमति की रचनाँए, पुस्तकें तथा ग्रन्थ पढ़ो ।

6. **उत्तम-श्रेष्ठ 'सेवा' में 'जुट' जाओ ।**

जरूरी नुक्ता यह है कि तुच्छ रुचि वाले संकल्प या ख्याल को यदि **उसी समय तत्काल —**

टाला न गया,

भुलाया न गया,

मन की तख्ती से मिटाया न गया,

तब यह तुच्छ संकल्प या ख्याल हमारे मन में —

1. **बार-बार याद आयेगा ।**
2. **घोटा जायेगा ।**
3. **अभ्यास होता जायेगा ।**
4. **अन्तःकरण में धँस-बस समा जायेगा ।**
5. **इस ग्लानि का 'ज़हर' बढ़ता जायेगा ।**
6. **आन्तरिक 'गुप्त अग्नि' में जलते-सड़ते रहेगें ।**
7. **अनायास तथा सहज ही 'पाप' होते रहेगें ।**
8. **परम-पवित्र भावना से कोरे तथा कठोर हो जायेगें ।**
9. **यम के वश पड़ जायेगें ।**
10. **लोक परलोक व्यर्थ खो कर, आवागमन के चक्र में पड़े फिरेगें ।**

इसी कारण गुरबाणी द्वारा हमें **यूँ ताड़ना की गयी है** —

दुखु तदे जा विसरि जावै ।।
भुख विआपै बहु बिधि धावै ।। (पृ. 98)

नाम संगि मनि प्रीति न लावै ।।
कोटि करम करतो नरकि जावै ।। (पृ. 240)

कोटि बिघन तिसु लागते जिस नो विसरै नाउ ।। (प. 522)

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी ।। (पृ. 635)

नानक विणु नावै आलूदिआ जिती होरु खिआलु ।। (पृ. 1097)

जिनी नामु विसारिआ बहु करम कमावहि होरि ।।
नानक जम पुरि बधे मारीअहि जिउ संन्ही उपरि चोर ।। (पृ. 1247)

उपरोक्त विचारों को अंग्रेजी में यूँ दर्शाया जा सकता है —

Every thought that passes through our mind, leaves *an indelible trace*-amongest the million cells of our brain. These traces are unconsciously and constantly *accumulating in our mental computer-which affect and shap*e thoughts, conception, and faith. Their sum total is manifested in our habits, character and personality.

90 *percent* of this PERSONALITY is made-up of, and dependent on, our *inner* mental, emotional and spiritual *qualities*. Only 10% is attributable to *outer* factors.

Everything we do makes it easier to do the same thing *over again.* This is because, electric currents record all that happend to us-by creating path-ways or grooves, among the cells of our brain. The more *frequently* thoughts and actions are *repeated* the *deeper and broader,* the grooves become !

Every smallest stroke of virtue or vice leaves behind ' never-so-little' scar on our mind — good or bad.

The drunkard excuses himself for every fresh dereliction by saying ' I won't count it this time.' Well, he may not count it, but it is *being counted* 'none-the-less' in his *Mental Computer* ! Down among his nerve cells and fibres — the molecules and electrons are *counting it, registering and storing it up, to be used against* him — when the next temptation comes !

In other words, Man is *incessantly weaving* his own good or bad world around himself by his own thoughts and deeds thus shaping his own *Fate* and *Destiny.*

Thoughts have tremendous powers, which can be developed to *un-limited degree — by repetition, contemplation, concentration and meditation.*

The lower depraved thoughts should be forgotten or *brushed aside at once,* as they come — by diverting the mind to higher, nobler and *inspiring thoughts,* If these depraved thoughts *are not forgotten or diverted, in the first instance, and entertained & cultivated, they per*colate and penetrate deep into mind and sub-consciousness. Gradually in course of time, they become *insidious and powerful* —to make us corrupt, depraved and vulgar, with a trail of lower elements of selfishness, envy, prejudice avarice, jealously, hatred, anger, egocentric, aggressive, wicked and cruel, and what not !

The easiest and quickest way.

1. to get out of this *vicious circle* of depraved and harmful thoughts,

and

2. to *save ourselves* from the *horrible consequences* of these vicious thoughts —

is

1. to replace and substitute them with higher, nobler, *inspiring thoughts*.

2. to *divert our mind* to sublime contemplation and meditation

and

3. to *seek* Awakened and Enlightned Souls and imbibe sublime inspirations in their holy company.

But the *crucial point i*s to develop *inner discriminating power* where by we can distingunish between :—

Right	and	wrong,
Good	and	bad,
Virtue	and	vice,
Morality	and	sin,
Spirituality	and	materialism,
Love	and	hate,
God	and	devil,

and make the *important choice* of future course for higher and nobler lives.

Without this discrimination and choice, our lives are like compass-less and radar-less *'ships' drifting about aimlessly* and knocked about and battered by storms and vagaries of the vast ocean.

To:— 1. develop the power of *discrimination,*

2. making decision of crucial choice of life-course,

3. taking a *'turning point*' of life,

4. walking on the chosen course of life,

inspiration, help and guidence of Enlightened and Blessed souls is necessary-rather *essential.*

It is really difficult and tardy to *adopt and work* the REVERSE process of New Course of Nobler life, but it becomes *easy and smooth* in the *company* of Illuminated and Enlightened souls.

As the reverse process takes place in our life, our mind is gradually *purified and spiritualised* in the Sadh Sangat, and becomes *amenable and conducive* to the sublime influence of *subtle vibrations* of Divine Light and Grace.

At the same time the influence of 'materialism' is imperceptibly reduced and *eliminated* from our consciousness.

The more thoughts are *spiritualised* by sublime company and meditation, the more they become *subtler, powerful and dynamic*— with reflections from Divine Light and Grace.

In this way our life is transformed from :--

vice to virtue,

Sin to nobility,

materialism to spirituality.

Ultimately, when our souls are awakened and illuminated by the Grace of Guru, we in turn, become channel for the —

1. Outward flow, and

2. Expression of

all Divine attributes of *JOY, BLISS, LOVE* and *COMPASSION*; thereby inspiring, helping and guiding other aspiring souls.

समाप्त